



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(2): 165-167
www.allresearchjournal.com
Received: 07-12-2021
Accepted: 09-01-2022

डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर—संस्कृत
बी०एस०एन०वी० पी०जी० कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

राष्ट्रोत्थान में सत्कार्यावदान

डॉ. अशोक कुमार दुबे

सारांश

राष्ट्र शब्द की व्यापकता सांस्कृतिक इकाई को आत्मसात किये हुए हैं। प्राचीन भारत में अत्यंत विकसित अनेक राज्य थे। इसका प्रमाण ऐतरेय ब्राह्मण के अध्ययनोपरान्त सुस्पष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में राष्ट्र की परिकल्पना अति प्राचीन काल से पल्लवित-पुष्पित थी। राष्ट्र के उत्थान हेतु उस समय में सभी समर्पित रहते थे, किन्तु आधुनिक परिवेश में समय चक्र के साथ मानव-प्रवृत्ति में गम्भीर परिवर्तन दिखने लगे हैं। लोभवृत्ति-भोगवृत्ति के वशीभूत होकर मानव राष्ट्र उन्नयन के लिए अपने श्रेष्ठ आचरण को सुरक्षित नहीं रख पा रहा है। आत्मकेन्द्रित होकर भौतिक विकास की स्पर्धा में भारतीय लोकमानस राष्ट्र को विभ्रम में डाल रहा है। जबकि हमारे पर्थनिर्देशक ऋषियों ने सदैव उन्नतिकारक मूलमंत्र को बतलाया है। जिसमें राष्ट्रोन्नयन की आत्मा निवास करती है।

“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।।”

कूटशब्द: सत्कार्यावदान, लोकमानस, आत्मकेन्द्रित, अपौरुषेय राष्ट्रोन्नयन आदि

प्रस्तावना:

राष्ट्र शब्द की व्यापकता सांस्कृतिक इकाई को आत्मसात किये हुए हैं। सर्वप्रथम ‘राष्ट्र’ शब्द ‘राजूदीप्तौ’ इस धातु से “सर्वधातुश्यष्टन” औणादि सूत्र से ष्टन-प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। राष्ट्र शब्द और किन-किन अर्थों में प्रयुक्त होता है सर्वप्रथम अपौरुषेय वेद में इसका वर्णन किया गया है—

युवा राष्ट्रं बृहत् ¹
वरुणो राजा राष्ट्राणाम् ²
राष्ट्रं राज्यम् ³

आदि अनेकानेक अर्थों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखा के अद्योलिखित मन्त्र में राष्ट्रोन्नयन की कामना की गयी है—

आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्
राष्ट्रे राजन्यः शूर इष व्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्
दोग्धी धेनुर्वोठानड्वानाशुः सपितः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रथेष्टाः सभेयो युवास्य जयमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो न कल्पताम्। ⁴

हे ब्रह्मन्। ब्राह्मण समाज ब्रह्मतेज से युक्त हो; हमारे राष्ट्र में राजन्य शूर, शरसन्धाननिपुण, लक्ष्यभेदक एवं महारथी हो, गाय दूध देने वाली हो, वृषभ भारवाहक हो, अश्व द्रुतगामी हो, नारी योषाः; पुरन्धी आदि कुल को एक सूत्र में बाँधने वाली हो। इस यज्ञमान यज्ञकर्ता को विजयी जिष्णुः। सभ्य और स्वस्थ (युवा) पुत्र (वीर) हो, हमारी इच्छानुसार आवश्यकतानुसार मेघ वर्षा करे। हमारे लिए फलवती औषधियाँ अन्नादि परिपक्व हों; इस प्रकार हमारे योग-क्षेम अप्राप्त की प्राप्ति योग और प्राप्त का संरक्षण क्षेम कहलाता है सम्पन्न हो।

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर—संस्कृत
बी०एस०एन०वी० पी०जी० कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

अथर्ववेद में भी राष्ट्र शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है—

आत्वाहार्षमन्तरभूर्ध्वस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाजन्तु मा त्वदराष्ट्रभधिभ्रशत् ॥ 5
तथा—‘माता पृथ्वी राष्ट्रस्य त्विषामूर्जीं च प्रयच्छतिस्म ।’ 6

‘राष्ट्र’ शब्द के विषय में इन मन्त्रों में प्रयुक्त भारतीय मनीषियों का प्रकर्ष दिखाई देता है। ऐतरेयशतपथ—ब्राह्मण के अध्ययनोपरान्त यह सुस्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में अत्यन्त विकसित अनेक राज्य थे। भारतवर्ष में राष्ट्र की परिकल्पना अति प्राचीन काल से पल्लवित—पुष्पित थी।

सत्कार्यावदान् से अभिप्राय है—श्रेष्ठ आचरण तथा श्रेष्ठजनों के द्वारा किया गया आचरण। हमारे ऋषि—मुनियों ने सदैव सत्कार्याचरण के अन्तर्गत दुर्विचारों का परित्याग, ईश्वर में विश्वासपूर्वक अपने चित्त को लगा देना तथा शास्त्रों के उपदेश से मन को पवित्र कर समुचित व्यवहार करना अपेक्षित बतलाया है।

राष्ट्रोन्नयन के लिए धर्म, संस्कृति, जाति, भाषा आदि का समृद्ध होना अनिवार्य हो जाता है तथा इनका संरक्षण होने पर ही राष्ट्रोन्नयन तपमें सार्थक स्वास्थ्य को भी आवश्यक हो जाता है। वास्तव में भौतिक दृष्ट्या एक उन्नयन प्राप्त राष्ट्र भी अयोग्य कर्णधारों में पतनोन्मुख हो जाता है, देश की अखण्डता और समुन्नति के लिए आगामी वंशजों का संस्कार सम्पन्न एवं समर्थ होना अनिवार्य हो गया है।

आधुनिक परिदृश्य में राष्ट्रोन्नयन के लिए अनेकानेक प्रकार के योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है। वस्तुतः राष्ट्रोन्नयन की भावना अत्यन्त प्राचीन है, आधुनिक नहीं है। सदैव सत्कार्याचरण को सफल रूप एवं दिशा प्रदान करने के लिए शास्त्र पुराणादि में समुद्घोषित की गई है कि मनुष्य का सत्कार्याचरण ही इस भूमण्डल पर शेष रह जाती है तथा अपने ‘कर्मों’ से समुत्पन्न अदृष्ट द्वारा ही जीव बारम्बार आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

किसी राष्ट्र की गौरव पताका का प्रमुख कर्णदार होता है नागरिकों का आचार—विचार एवं नीतियाँ। राष्ट्र के विकास में नागरिकों को आहार्य—विहार राष्ट्रोन्नयन की परिकल्पना से परिपूर्ण होना चाहिए। जो राष्ट्रोन्नयन में आर्थिक रूप से पूर्णतया धनधान्य सम्पन्न हो, जो राजनीतिक रूप से योग्य एवं समर्थ शासकों से शासित हो, जिसमें कृषि तथा व्यापार की प्रबल सम्भावनायें उत्तरदायित्वों के प्रति समर्पित नागरिकों के क्रियाकलापों से उत्तरोत्तर विकास करता रहे तथा राष्ट्रोन्नयन में योगदान करता रहे। इसके लिए—

‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ तथा
‘आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्’ 7

जैसे आदर्शों के प्रति स्नेहासिक्त होना आवश्यक हो जाता है। आधुनिक समय में राष्ट्रोन्नयन के लिए जाति एवं वर्ग आदि का भेदभाव अवरोध के रूप में प्रबल होने लगा है। यद्यपि भेद—भाव महत्त्वहीन एवं शत्रुवत् है। सर्वदा सम्पूर्ण विश्व को एक समान स्वीकार कर तथा ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ के भाव से अनुप्राणित होकर सत्कर्म को गति प्रदान करना चाहिए। हम सब अमृत रूप परम पिता परमेश्वर ब्रह्म के संतान हैं और यह महान राष्ट्र हम सबका एक ही कुटुम्ब है, राष्ट्रनायक आधुनिक कवि भी अपने ग्रन्थ ‘राष्ट्रगौरव’ में यह उद्घोषित करते हैं कि—

सर्वथा सत्क्रियां कर्तुमभश्याताम्, जातिवर्गादिभेदः
समुत्सार्यताम्।

ब्रह्मणश्चात्मजाः सन्ति सर्वजना, नीडमेकं महद्
विश्वमुद्घोष्यताम् ॥ 8

राष्ट्र का प्रांगण अत्यन्त विशाल एवं अद्भुत है। सम्पूर्ण राष्ट्रनायक आनन्द से परिपूर्ण हो, यह तब सम्भव होगा जब व्यक्ति ज्ञानपुंज से अपने मन को प्रकाशित करेगा तथा राग—द्वेष से दूषित मन का प्रक्षालन कर सत्कर्म की ओन उन्मुख होगा। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण मानव के व्यापकता को बतलाते हुए उपदेश देते हैं कि—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ 9

वास्तविक ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित मन संस्कारित तथा सत्कार्यावदान में प्रवृत्त हो जाता है, क्योंकि हमारे ऋषि—मुनियों ने सदैव मन्त्र—तन्त्रात्मक विविध ज्ञान और शास्त्रनुमोदित स्वधर्म के अनुसार कर्म निर्दिष्ट किया है। वास्तव में काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मनुष्यमात्र के उन्नति एवं राष्ट्रोन्नयन में बाधक है। गोस्वामी तुलसीदास जी अपने पवित्र ग्रन्थरत्न श्रीरामचरितमानस में करते हैं कि—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिन ज्ञान धाम मन करहि निमिष मुहुँछोभ ॥ 10

आधुनिक परिवेश में समय के साथ मानव—प्रवृत्ति में गम्भीर परिवर्तन दिखने लगे हैं। लोभवृत्ति एवं भोगवृत्ति के वशीभूत होकर मानव राष्ट्रोन्नयन के लिए श्रेष्ठ कार्य के प्रति अपने आचरण को सुरक्षित नहीं रख पा रहा है, क्योंकि अर्थप्रधान सामाजिक स्थिति में मनुष्य की सर्वाधिक ऊर्जा—सुख—संसाधनों के संचय और दम्भ के प्रकाशन में व्यय हो रही है। मोहग्रस्त मानव भौतिक प्रपंचों से व्यथित मन वाला होकर अपूर्व अशान्ति का अनुभव करने लगा है, यद्यपि कि ब्रह्मनिष्ठ महर्षि आदि, जैसे—शान्त पात्र में तैल आदि स्नेह स्थिर रहता है, उसी प्रकार कर्तव्य—अकर्तव्य के बोध से भोग—मुक्त हो कर सत्कर्म करने की प्रेरणा देते रहे हैं। वर्तमान समय में राष्ट्र में स्थित प्रत्येक व्यक्ति असीमित कामनाओं के पराकाष्ठा को प्राप्त कर दुःख पीड़ित होते जा रहे हैं। राष्ट्र के उन्नयन में समर्पित आस्तिक वर्ग के चित्त को उद्वेलित करने वाली स्थिति उत्पन्न हो गयी है। आत्मकेन्द्रित होकर भौतिक विकास की स्पर्धा में भारतीय लोकमानस राष्ट्र को विभ्रम में डाल रखा है। सनातन जीवन क्रम में जो मनुष्य भोगमुक्त हो सत्कार्याचरण के सिद्धि प्राप्त कराने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे वस्तुतः जननी सद्दृश राष्ट्र के लिए द्वेषरहित हो प्रसन्नचित्त होकर रात—दिन देशभक्ति द्वारा अपने राष्ट्रोन्नयन के लिए सत्कार्याचरण करते रहते हैं। राष्ट्रोन्नयन के प्रति समर्पित जन को श्रेष्ठ आचरण के अन्तर्गत, सत्य, शील, विनीत, नीतिवत् मार्ग, सेवाश्रम, उज्ज्वल चरित्र के मार्ग को आत्मसात करना चाहिए। हमारे पथनिर्देशक ऋषियों ने सतत् उन्नति की कामना की है। सबको एक दृष्टि से देखकर—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत् ॥ 11

जैसे उन्नतिकारक मूलमन्त्र हो बतलाया है, जिसमें राष्ट्रोन्नयन की आत्मा निवास करती है। सम्पूर्ण उन्नयन के लिए विद्यमान तत्त्वों के रहने पर भी वास्तविक राष्ट्र के प्रति विश्वास और प्रेम का होना अतिआवश्यक है। इसी क्रम में अत्यन्त शिक्षाप्रद गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा वर्णित पद्य के द्वारा किसी भी तत्त्व के प्रति कैसा प्रेम होना चाहिए दृष्टिगोचर होता है कि—

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन
चतुराई।
भगति हीन नर सोहड़ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ
जैसा।।”¹²

राष्ट्रोत्कर्ष के लिए भी वास्तविक राष्ट्रभक्ति की आवश्यकता है। राष्ट्र के प्रति भक्ति न होने पर उन्नति सम्भव नहीं हो सकती। सच्ची राष्ट्र-भक्ति काम, क्रोध, लोभादि से विरत होकर ही सार्थक हो सकती है, क्योंकि मनुष्य के विनाश का मार्ग मूलरूप से काम-क्रोधादि है। मनुष्य का एवं मनुष्य से जुड़े सम्पूर्ण वस्तु-स्थिति का विकास उसके संयमित विवेक से सम्भव होता है। विवेक, विनय, परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान और वेद-पुराणादि का यथार्थ ज्ञान जिसके पार्श्व में स्थित रहता है। वही विवेक से सार्थक उन्नति को प्राप्त कराता है। साथ-ही-साथ दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करता है। जहाँ अभिमान और दम्भ का निवास होता है वहाँ सच्ची राष्ट्रोन्नयन की कामना अवश्य फलीभूत नहीं होती है।

उपनिषद् एवं सम्पूर्ण धर्म ग्रन्थ हमें चेतना से जाग्रत होकर समुचित कार्यों को सम्पादित करने का निर्देश देते हैं। जैसा कि कठोपनिषद् में भी सम्पूर्ण जनमानस के कल्याणार्थ कहा गया है-

उतिष्ठ जाग्रत प्राप्त वरान्निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो
वदन्ति।।¹³

किन्तु आज के इस वर्तमान परिदृश्य में मानों मानव बोधता से विलग होकर कार्यों को साकार कर अपने महत्वाकांक्षा को प्राप्त करना चाहता है। यहीं से सत्कार्य में बाधाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। यह सम्पूर्ण चराचर एक-दूसरे के प्रति सत् का आचरण करें इसकी शिक्षा हमारे धर्मग्रन्थ देते हैं। सम्यक् आचरण से ही हमारे राष्ट्र को एक अलौकिकता से परिपूर्ण कार्यों का सम्पादन हो पाता है। राष्ट्रोन्नयन के लिए सत्कार्यावदान की इच्छा बलवती होनी चाहिए; क्योंकि असत् से किसी प्रकार का सत् कार्य क्या समुत्पन्न हो सकती है? हमारे समक्ष एक प्रश्न बनकर उपस्थित हो जाता है। वास्तव में सत् से ही सत् आचरण का प्रादुर्भाव होता है। एक राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिए अत्यधिक त्याग एवं बलिदान की आवश्यकता होती है। वे भी सही मार्ग पर गतिशील हो और उचित मार्ग पर भटकाव की स्थिति न हो। जिस प्रकार, व्यक्ति से समाज, समाज में संस्कृति एवं संस्कार की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार समस्त जनमानस से ही राष्ट्र का निर्माण होता है तथा उस राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिए समुचित सत्कार्यावदान की आवश्यकता होती है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद, 2/8/42.
2. ऋग्वेद, 3/34/11.
3. ऋग्वेद, 6/84/2.
4. शु.य., मा.शा., 2/22.
5. अथर्ववेद, 6/8/1.
6. अथर्ववेद, 19/55/5.
7. हितोपदेश, मित्रलाभ, 14.
8. महा., शा., पर्व.
9. रा.गौ., 54.
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/29.
11. रा.मा., अ.का., 38(क).
12. रा.मा., अ.का., 611.
13. कठो., 1/14.